परमतत्व का दार्शनिक स्वरूप

डॉ० श्वेता शुक्ला

प्रवक्ता–संस्कृत
जय नारायण स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सेहरा, करछना, इलाहाबाद।

वेद सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय के दीप्तिपुंज हैं। वेदों की दार्शनिक विचारधारा का प्रमुख अंग अद्वैतवाद है। वेदों में जहाँ एक ओर एकदेवतावाद या एकेश्वरवाद का दर्शन होता है वहीं दूसरी ओर बहुदेवतावाद का भी दर्शन मिलता है। भले ही ऋग्वेद में अनेक देवी–देवताओं की स्तुतियाँ मिलती हैं तथापि वेदों के ऋषि मुख्यतः किसी एक अदृश्य शक्ति के उपासक थे। ऋग्वेद में इन्द्र, मित्र, वरूण, अग्नि आदि अनेक देवताओं का स्तुति गान किया गया है। वेदों की अनेक श्रुतियाँ अद्वैतवाद का समर्थन करते हुए परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा को एक ही मानती हैः–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरयो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्याग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।[1]

अर्थात् उस एक परमात्मा को इन्द्र, मित्र, वरूण कहते हैं। वही आकाश में सूर्य है। वही अग्नि, यम और मातरिश्वा (वायु) है। उस एक सत्य को विप्रजन अनेक प्रकार से कहते हैं। वह सर्वेश्वर भगवान एक ही है, वह एक ही अनेक नामों के द्वारा स्तूयमान होता है। उस एक के अनेक नाम होने पर भी उसकी एकता अक्षुण्य रहती है।

जिस परमात्मा से इस जगत् की उत्पत्ति होती है, जो संसार के समस्त प्राणियों में विद्यमान है जिसका न आदि है और न अन्त वह परमपिता परमात्मा एक है। अतः वेद कहते हैं– हे उपासक जो एक है, उस परम ऐश्वर्यशाली प्रभु की उपासना करो।[2]

वैदिक ऋषियों ने एक ही चेतन शक्ति की उपासना की। यह जो कुछ है, जो कुछ था और जो कुछ होगा वह एक ही पुरुष है– **पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।**[3]

वेदों में उस अद्वैत तत्त्व को आत्मा, निष्काम, आत्मनिर्भर, अपर, स्वयंसिद्ध, आनन्दमय, अनिर्वचनीय, सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापक, शाश्वत और नित्य आदि अनेक विभूतियों से सुशोभित किया है।[4] परमसत्ता का दार्शनिक स्वरूप अद्वैतवाद के सिद्धान्त पर आधारित हैः–

द्विधा इतं द्वीतम् तस्य भावोद्वैतम्। द्विधेतं द्वीतमित्याहुस्तद्भावे द्वैतमुच्यते।।[5]

अद्वैत अर्थात् न द्वैत इति अद्वैत जो दो नहीं एक है। अद्वैत वेदान्ती गोड़पादाचार्य ने माण्डूक्य कारिका में कहा है– अनादि माया के कारण अज्ञान की निद्रा में सोया जीव जब प्रबुद्ध होता है, तब उसे अद्वैत का बोध होता हैः–

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुद्धते। अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा।।[6]

Scanned with CamScanner

जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य का जो प्रतिपादन अद्वैत वेदान्त बताता है उसका मूल आधार ऋग्वेद है।[7]

सृष्टि विचार– ऋग्वेद में हिरण्यगर्भ सूक्त और पुरुष सूक्त द्वारा एकदेववाद की स्थापना की गई। जब प्रश्न यह आता है कि परम पुरुष जो सृष्टि का समस्त चराचर जगत् का आधार सृष्टि का नियामक है वह कौन है? तो वैदिक ऋषि बताता है कि वह परम पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों (अनन्त) सिर वाला, हजारों आँखों वाला और हजारों पैरों वाला है जिसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किया है।[8]

कौन इस बात को वास्तविक रूप से जानता है और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि किस उत्पादन कारण से सब ओर से उत्पन्न हुयी। देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होने से बाद के हैं। अतः ये देवगण भी अपने से पहले की बात के विषय में नहीं बता सकते इसलिए कौन मनुष्य जानता है जिस कारण यह सारा संसार उत्पन्न हुआ।[9]

जिसका उत्तर पुनः नासदीय सूक्त में मिलता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार के उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुयी इसका मुख्य कारण है ईश्वर के द्वारा इसे धारण करना। इसके अतिरिक्त अन्य कोई धारण नहीं कर सकता। इस सृष्टि का जो स्वामी ईश्वर है, अपने प्रकाश या आनन्द स्वरूप में प्रतिष्ठित है। हे प्रिय श्रोताओं! वह आनन्द स्वरूप परमात्मा ही इस विषय को जानता है उसके अतिरिक्त (इस सृष्टि की उत्पत्ति तत्त्व को) कोई नहीं जानता है।[10] इसी प्रकार ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में सृष्टि रचना का चित्रण किया गया है। इस जगत् की उत्पत्ति विराट् पुरुष से बतायी गयी है। उस आदि पुरुष से विराट् यानी ब्रह्माण्ड जगत् उत्पन्न हुआ और उसी से जीवात्मा। उस विराट् पुरुष के साथ देवों ने यज्ञ किया और तब उसके सिर से आकाश, नाभि से अन्तरिक्ष, पैर से पृथिवी, मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्र तथा अग्नि और श्वांस से वायु की उत्पत्ति हुई।

यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरूष है। जो कुछ हो चुका अर्थात् भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यकालीन जगत् भी पुरुष है। अर्थात् भूत–भविष्य, वर्तमान सब यही एक पुरुष है।[11]

आत्म तत्व निरूपण– वेदों में आत्म तत्व का सूक्ष्म निरूपण किया गया है। ऋग्वेद के ब्रह्म सूक्त में कहा गया है कि आत्मा, अकाम, धीर, अमृत, स्वयंभू और रस से तृप्त है।[12] आत्मा वह है जो सभी में व्याप्त हो। बृहदारण्यक उपनिषद् (2/5/9) में कहा गया है कि 'अयमात्मा सर्वानुभः' अर्थात् सर्वज्ञता आत्मा का गुण है।[13] श्वेताश्वतर उपनिषद् में आत्मा को अन्तर्यामी कहा गया है।

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।[14]

श्रीमद्भगवत्गीता में आत्मा को अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन कहा है, जो शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता है–

Scanned with CamScanner

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[15]

वह परमात्मा धर्म और अधर्म से रहित, कर्म और त्याग से परे, भूत, वर्तमान और भविष्य से भिन्न है।[16] यमराज जब नचिकेता से कहते हैं कि जिस पद और लक्ष्य की महिमा वेद गाते हैं, जिसके लिए मनुष्य सम्पूर्ण तप आदि साधनों का सहारा लेता है, तथा जिसको पाने के लिए साधक ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करता है वह एक शब्द ॐ है। ये शब्द ही ब्रह्म है यही परम् है, जो इसे जान लेता है उसकी सारी इच्छायें पूरी हो जाती है। मुक्ति को प्राप्त करने का सबसे ऊँचा साधन है, सबसे बड़ी उपासना है, यह ज्ञान स्वरूप आत्मा है, अजन्मा है, अमर है, सनातन है, नित्य है, पुरातन है। मृत्यु के बाद शरीर की समाप्ति हो जाती है, पर वह सतत् विद्यमान रहता है।

नचिकेता! अगर मारने वाला सोचता है कि मैं मारता हूँ और मरने वाला सोचता है कि मैं मर गया हूँ तो वे दोनों ही अज्ञानी हैं, वे दोनों ही आत्मस्वरूप को नहीं जानते हैं। क्योंकि यह आत्मा न किसी को मारता है और न ही मारा जाता है–

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम्। उभौ तौ न विजानीतो नायँ हन्ति न हन्यते।।[17]

इसी बात को गीता में भी स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है–

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।[18]

यह जीवात्मा और परमात्मा एक हैं। इन दोनों के ऐक्य का मूल आधार ऋग्वेद है। वेद, विद्वान या ऋषि मुनि लोग खोज कर रहे हैं और इसको उन्होंने कहा 'नेति नेति' अर्थात् इसका कोई अन्त नहीं। ये कहाँ है, इसका आकार क्या है, इसका स्वरूप क्या है? कोई नहीं जानता। इसका न आदि है न मध्य है और न ही अन्त है। राम अनन्त हैं, वो कोई दशरथ जी के लड़के नहीं बल्कि अनन्त परमात्मा हैं। उनका कोई पार नहीं पा सकता। मुस्लिम धर्म, इसाई धर्म, सिक्ख, बौद्ध, जैनी और अन्य जो हमारे धर्म गुरू हैं कोई उसे अल्लाह, कोई गॉड, कोई वाहे गुरू, कोई भगवान बुद्ध, कोई महावीर तो कोई ईश्वर कहता है।

एक वही सत्य है जिसको श्रेष्ठ जन अनेक रूपों से बोलते हैं। यह ऋग्वेद का नीतिवचन है। वेद, पुराण, उपनिषद् ने उसे एक माना। इस कारणभूत मूल सत्ता को, जिसकी ओर विवेकशील पुरुष की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, वेदान्त में बृहत्, ब्रह्म, शिव, विष्णु और महाकाल आदि नामों से कहा गया है। इस परम तत्त्व के प्राप्त हो जाने पर ज्ञान, कर्म और भाव–प्रवाहों का अन्त हो जाता है। उसी को सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं, एकमेवं, अद्वितीयं, शान्तिमयं, शिवं, आनन्दमयं और अमृतं कहा गया।[19] एक ही परमेश्वर को अनेक रूपों से लोग देखते हैं कोई सगुण तो कोई निर्गुण मान रहा है कोई अद्वैत, कोई द्वैत तो कोई द्वैताद्वैत, कोई विशिष्टाद्वैत, कोई विशुद्धाद्वैत मान रहा है।

ब्रह्म वो है जो संसार के दुःखों का विनाश कर देता है। ऋग्वेद के मंत्रों में ईश्वर को हिरण्यगर्भ और प्रजापति आदि नामों से पुकारते हुए कहा गया है कि सुखस्वरूप और

Scanned with CamScanner

सुख देने वाले उस प्रजापति परमात्मा की ही समर्पण भाव से भक्ति करनी चाहिए।[20]

मनुष्य निरन्तर इसकी खोज में वनों, पहाड़ों, कन्दराओं में अनेक वर्षों तक तपस्या करता रहता है। गीता में भगवान् कृष्ण ने ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग ये तीन मार्ग बताये। मनुष्य ज्ञान के द्वारा, कर्म के द्वारा, भक्ति के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

ऋग्वेद हमें तृण से लेकर परमब्रह्म तक का ज्ञान कराता है।[21] उसके ज्ञान का मूलभूत सारतत्व यही है कि हे मनुष्य तू स्वयं सच्चा मनुष्य बन तथा दिव्य गुणयुक्त सन्तानों को जन्म दे अर्थात् सुयोग्य मानवों के निर्माण में सतत् प्रयत्नशील रहे। मनुष्य तभी मनुष्य बन सकता है जब उसमें मनुष्यता के गुण विद्यमान हो। यह जो हमारे भीतर चल रहा है वह ईश्वर है, अर्थात् ईश्वर। यही सूक्ष्म रूप से हमारे शरीर में हर जीव में विराजमान है। चाहे वो हाथी हो, घोड़ा हो, कुत्ता हो वह सभी जीवों में विद्यमान है। व्यापक रूप से विचार किया जाये तो विश्व के सभी धर्मों, जातियों के इतिहास में देवत्व की भावना का उद्रेक पाया जाता है। देवत्व की इस सार्वजनीन भावना ने मानव समाज में सभ्यता का सूत्रपात किया। वेदों में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरूण, सूर्य, उषस्, सरस्वती, वाच् आदि अनेक देवी–देवताओं की स्तुति की गई। वे सभी एक परमसत्ता के प्रतीक हैं।

वैदिक ऋषि पुरुष, ब्रह्म, विराट् आदि नामों का प्रयोग करते हैं जो सामान्य व्यक्ति के लिए अगम्य नहीं है। इनमें मानव के कल्याण के लिए अनुग्रह–परायणता का सहज स्वरूप देखने एवं अनुभव करने को मिलता है। मानव की शक्तियाँ, कर्म, योग और ज्ञान है। जगत् के अधिष्ठान रूप उस परमसत्ता के निर्माता की शक्तियाँ अनन्त हैं, असीम हैं, किन्तु मानव की शक्तियाँ ससीम एवं सान्त हैं। मानव अपने श्रेय (कल्याण) और प्रेय (सुख) के लिए परब्रह्म परमेश्वर की शरण में जाये।

वैदिक ऋषियों ने जगत् के कल्याण के लिए लोकानुग्रह की आकांक्षा की। वैदिक मन्त्र मनुष्य के भद्र तथा कल्याण के लिए निरत है। स्वभाव से अमृताचरण मनुष्य सत्याचरण देवता का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए यजुर्वेद में इस प्रकार प्रार्थना करता हुआ दिखायी देता हैः– 'हे व्रतों के पति अग्निदेवता, मैं अमृत को छोड़कर सत्य को प्राप्त करना चाहता है। आपके अनुग्रह से मैं इसको प्राप्त कर सकूँ, यही मेरा व्रत है।[22]

वैदिक बहुदेवतावाद भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता या बहुत्व में एकत्व का अद्भुत समन्वय है। उनमें तैंतीस करोड़ देवी–देवताओं की मान्यता न तो कपोल कल्पना है और न ही धर्मान्धता है। यह बहुदेवतावाद विशाल मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय है। तैंतीस कोटि देवताओं की पौराणिक मान्यताओं के सम्बन्ध में भाष्यकार सायण ने लिखा है कि यह उनकी महिमा का प्रताप है। उन सभी का लक्ष्य एक ही परमेश्वर है। (तस्मात्सर्वेरपि परमेश्वर एव हूयते)। ऋग्वेद[23] और ऐतरेय ब्राह्मण[24] में देवताओं के रूप में एक ही परमेश्वर को अनेक नामों से पुकारा गया है। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल पचपनवें सूक्त के समस्त बाईस मन्त्रों में परमसत्ता का स्वरूप परमेश्वर को सम्पूर्ण देवताओं की एक ही शक्ति के रूप में बताया गया है– महद्देवानां सुरत्वमेकम्।[25]

Scanned with CamScanner

इस प्रकार उपर्युक्त प्रसंगों के आधार पर यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वेद सम्पूर्ण भारत वर्ष की बौद्धिक एवं वैचारिक उन्नति के मूल स्रोत हैं। वेद अनेकता में एकता स्थापित करते हैं। वेद श्रुति का एक को सर्वत्र और सभी को एक में देखने का यह व्यापक दृष्टिकोण विश्व की किसी अन्य सभ्यता–संस्कृति में देखने को नहीं मिलता।

वैदिक ऋषियों की ऐकेश्वरवाद या अद्वैतवाद की भावना विश्व के सभी धर्म के मानने वालों के लिए ग्राह्य है। वैदिक संस्कृति किसी एक विशेष जाति समुदाय, धर्म संस्कृति के लिए नहीं, अपितु जगत् के सभी मानवों के उद्धार के लिए है। जो मनुष्य से ऊपर, मानव से मानवेत्तर अर्थात् उस परमब्रह्म को सर्वशक्तिमान बताता है कि वह परब्रह्म परमेश्वर ही सम्पूर्ण जगत् का एकमात्र कर्त्ता है, उसके पूर्व या पर में कुछ नहीं है। इसीलिए कहा गया है कि– एको ब्रह्मद्वितीयो नास्ति।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, 1/164/46
2. य एक इत तमुष्टुहि कृष्टिनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः।। ऋग्वेद, 6/45/16
3. ऋग्वेद, 10/90/3
4. वैदिक साहित्य और संस्कृति–वाचस्पति गैरोला, पृ० 196.
5. बृहदारण्यक् वार्तिक, 4/3/1807.
6. माण्डूक्य कारिका, 1.16.
7. ऋग्वेद, 3/7/14–15.
8. ऋग्वेद, 10/90/1.
9. ऋग्वेद, 10/129/6.
10. ऋग्वेद, 10/129/7.
11. ऋग्वेद, 10/90/3.
12. ऋग्वेद, 10/9/44.
13. बृहदारण्यक उपनिषद्, 2/5/9
14. श्वेताशतरोपनिषद्, 6/11.
15. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/20.
16. कठोपनिषद्, 1/2/14.
17. कठोपनिषद्, 1/2/19.
18. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/19.
19. वैदिक साहित्य और संस्कृति–वाचस्पति गैरोला, पृ. 197.
20. ऋग्वेद, 10/121/1–9.
21. ऋग्वेद, 10/53/6.
22. यजुर्वेद, 20/21.
23. ऋग्वेद, 1/164/46.
24. ऐतरेय ब्राह्मण, 3/2/3/12.
25. ऋग्वेद, 3/55/1–22.

Scanned with CamScanner